2026 Volume: 02 Issue: 04 www.ijrpa.com ISSN 2456-9995 Review Article

International Journal Research Publication Analysis

Page: 01-09

अभिधर्म दर्शन में चित्त का स्वरूप

Braham Pal Singh (Bhikkhu Vimal Bodhi)*[1], Dr. Praveen Kumar[2], Dr. Champalal Mandrele[3]

[1]PhD Research Scholar, Samrat Ashok Subharti School of Buddhist Studies, Swami Vivekanand Subharti University, Meerut-250002.

[2]Professor, Samrat Ashok Subharti School of Buddhist Studies, Swami Vivekanand Subharti University, Meerut-250002.

[3]Assistant Professor & HOD, Samrat Ashok Subharti School of Buddhist Studies, Swami Vivekanand Subharti University, Meerut-250002.

Article Received: 02 March 2026
Article Revised: 20 March 2026
Published on: 10 April 2026

***Corresponding Author: Braham Pal Singh**
PhD Research Scholar, Samrat Ashok Subharti School of Buddhist Studies, Swami Vivekanand Subharti University, Meerut-250002.

DOI: https://doi-doi.org/101555/ijrpa.1844

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र में अभिधर्म दर्शन के अंतर्गत 'चित्त' की अवधारणा का दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक एवं व्यावहारिक विश्लेषण किया गया है। अभिधर्म परंपरा में चित्त को किसी स्थायी आत्मा के रूप में नहीं, बल्कि क्षणिक, अनित्य एवं कारण-निर्भर मानसिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया है। इस अध्ययन में चित्त के स्वरूप, उसके विभिन्न प्रकारों—जैसे कामावचर, रूपावचर, अरूपावचर एवं लोकुत्तर चित्त—तथा चेतसिक धर्मों के साथ उसके संबंध का विवेचन किया गया है। साथ ही, कुशल, अकुशल एवं अव्याकृत चित्त के माध्यम से कर्म और विपाक की प्रक्रिया को भी स्पष्ट किया गया है।

शोध में यह प्रतिपादित किया गया है कि चित्त ही कर्म का कर्ता है और उसी के आधार पर पुनर्जन्म तथा दुःख का चक्र संचालित होता है। प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धांत के माध्यम से चित्त की कारण-कार्य संबंधी प्रकृति को समझाया गया है। इसके अतिरिक्त, निर्वाण की प्राप्ति में चित्त की शुद्धि को अनिवार्य बताते हुए प्रज्ञा, शील और समाधि के महत्व को रेखांकित किया गया है। यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अभिधर्म का चित्त-सिद्धांत आत्मवाद का खंडन करते हुए दुःख-निरोध का एक वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत करता है, जो मानव जीवन के नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान में अत्यंत सहायक है।

मुख्य शब्द: चित्त, चेतसिक, क्षणिकता, अनात्म, कुशल-अकुशल, प्रतीत्यसमुत्पाद, कर्म-विपाक, निर्वाण, अभिधर्म दर्शन, बौद्ध मनोविज्ञान

प्रस्तावना

अभिधर्म दर्शन बौद्ध परंपरा का वह विश्लेषणात्मक और तात्त्विक अंग है, जिसमें तथागत के उपदेशों को अत्यंत व्यवस्थित, तार्किक एवं वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह केवल धार्मिक उपदेशों का संकलन नहीं है, बल्कि एक गहन दार्शनिक प्रणाली है, जो मानव जीवन के अनुभवों का सूक्ष्म विश्लेषण करती है। अभिधर्म का मूल उद्देश्य दुःख की समस्या का समाधान करना है। बौद्ध दर्शन का आरम्भ ही "दुःख" की स्वीकृति से होता है, और अभिधर्म इस दुःख के कारणों, उसकी संरचना और उसके निरोध के उपायों का विश्लेषण करता है।

अभिधर्म दर्शन की विशेषता यह है कि यह अनुभवों को समग्र रूप में न देखकर उन्हें छोटे-छोटे तत्त्वों—जिन्हें 'धर्म' कहा जाता है—में विभाजित करके समझने का प्रयास करता है। यहाँ 'धर्म' का अर्थ नैतिक नियम नहीं, बल्कि अस्तित्व के मूल घटक (elements of existence) से है। इस प्रकार यह दर्शन वस्तुओं और अनुभवों की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए एक विश्लेषणात्मक पद्धति अपनाता है। यह दृष्टिकोण इसे अन्य दार्शनिक परंपराओं से अलग बनाता है, क्योंकि इसमें किसी स्थायी आत्मा या शाश्वत सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया, बल्कि सब कुछ परिवर्तनशील और कारण-निर्भर माना गया है।

अभिधर्म का उद्देश्य केवल सैद्धांतिक ज्ञान प्रदान करना नहीं है, बल्कि यह एक व्यावहारिक मार्गदर्शन भी देता है। यह व्यक्ति को अपने अनुभवों का सूक्ष्म निरीक्षण करने और अपने मन की प्रकृति को समझने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार यह आत्म-अनुभूति (self-realization) और निर्वाण की दिशा में एक महत्वपूर्ण साधन बनता है। अभिधर्म में वर्णित तत्त्व—जैसे चित्त, चेतसिक, रूप और निर्वाण—के माध्यम से व्यक्ति यह समझ सकता है कि उसका अस्तित्व किन-किन तत्वों से बना है और वह किस प्रकार दुःख के चक्र में बंधा हुआ है।

इस संदर्भ में 'चित्त' को अभिधर्म दर्शन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। चित्त वह मूल मानसिक तत्त्व है, जिसके माध्यम से समस्त अनुभव संभव होते हैं। यह जानने, अनुभव करने और प्रतिक्रिया करने की प्रक्रिया का केंद्र है। अभिधर्म के अनुसार, "चित्तं नाम आरम्मणं विजानातीति चित्तं"—अर्थात् जो अपने विषय को जानता है, वही चित्त है। इस प्रकार चित्त का मुख्य कार्य 'ज्ञान' या 'अनुभूति' है। चित्त को किसी स्थायी आत्मा के रूप में नहीं माना गया है। यह बौद्ध दर्शन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जो इसे आत्मवाद (आत्मा के स्थायित्व की धारणा) से अलग करती है। चित्त को एक प्रवाह (stream) के रूप में

देखा गया है, जो निरंतर बदलता रहता है। यह प्रत्येक क्षण उत्पन्न होता है और उसी क्षण नष्ट हो जाता है। इस क्षणिकता (क्षणभंगुरता) के कारण ही इसे 'अनित्य' कहा गया है। चित्त की यह प्रकृति यह स्पष्ट करती है कि हमारे अनुभव किसी स्थायी 'मैं' या 'आत्मा' के कारण नहीं, बल्कि निरंतर बदलती मानसिक अवस्थाओं के परिणाम हैं।

चित्त का एक अन्य महत्वपूर्ण गुण है—अनात्मता। चित्त में कोई स्वतंत्र, स्थायी या स्वायत्त सत्ता नहीं है। यह विभिन्न कारणों और परिस्थितियों पर निर्भर होकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह 'प्रतीत्यसमुत्पाद' के सिद्धांत के अंतर्गत आता है, जिसके अनुसार प्रत्येक घटना किसी कारण पर निर्भर होती है। चित्त का अस्तित्व भी कारण-कार्य संबंधों पर आधारित है, इसलिए इसे एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में नहीं देखा जा सकता। चित्त सदैव किसी न किसी विषय से संबंधित रहता है। यह कभी भी 'निर्विषय' नहीं होता। इसके विषय पाँच इंद्रिय विषय (रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श) या मानसिक विषय (विचार, कल्पना, स्मृति आदि) हो सकते हैं। इस प्रकार चित्त और उसका विषय एक दूसरे से अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं।

अभिधर्म दर्शन में चित्त को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया गया है, जिससे उसकी प्रकृति और कार्यप्रणाली को स्पष्ट रूप से समझा जा सके। प्रमुखतः चित्त को चार वर्गों में विभाजित किया गया है—कामावचर, रूपावचर, अरूपावचर और लोकुत्तर चित्त। कामावचर चित्त वह है, जो इंद्रिय विषयों और सांसारिक इच्छाओं से संबंधित होता है। यह सामान्य मनुष्य की मानसिक अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें व्यक्ति इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त सुखों और भोगों में लिप्त रहता है। इसमें लोभ, द्वेष और मोह जैसी प्रवृत्तियाँ प्रमुख होती हैं। रूपावचर चित्त उच्च ध्यान की अवस्थाओं से संबंधित होता है। जब व्यक्ति साधना के माध्यम से इंद्रिय विषयों से ऊपर उठता है और ध्यान की अवस्था में प्रवेश करता है, तब वह रूपावचर चित्त की अवस्था में पहुँचता है। इसमें मन अधिक स्थिर और एकाग्र होता है। अरूपावचर चित्त उससे भी उच्च अवस्था को दर्शाता है, जहाँ रूप का पूर्णतः अभाव हो जाता है और केवल मानसिक अनुभव शेष रहते हैं। यह ध्यान की अत्यंत सूक्ष्म अवस्था है, जिसमें व्यक्ति भौतिक जगत से लगभग पूरी तरह अलग हो जाता है।

लोकुत्तर चित्त सबसे उच्च अवस्था है, जो संसार के बंधनों से परे जाकर निर्वाण की प्राप्ति में सहायक होता है। यह चित्त चार मार्ग (स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत) और उनके फलों से संबंधित होता है। यह चित्त व्यक्ति को जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करने की क्षमता रखता है। इसके अतिरिक्त, नैतिक आधार पर भी चित्त को तीन भागों में विभाजित किया गया है—कुशल, अकुशल और अव्याकृत। कुशल चित्त वह है, जो शुभ कर्मों को उत्पन्न करता है और जिसके परिणामस्वरूप सुखद अनुभव प्राप्त होते हैं। अकुशल चित्त अशुभ कर्मों का कारण होता है और दुःख को जन्म देता है। अव्याकृत चित्त न तो पूर्णतः शुभ होता है और न ही अशुभ, बल्कि यह तटस्थ स्थिति को दर्शाता है। यह वर्गीकरण यह स्पष्ट

करता है कि चित्त की प्रकृति ही व्यक्ति के कर्म और उनके परिणाम को निर्धारित करती है। यदि चित्त शुद्ध और नियंत्रित है, तो वह शुभ कर्मों को उत्पन्न करेगा और अंततः मुक्ति की ओर ले जाएगा। इसके विपरीत, यदि चित्त अशुद्ध और विकृत है, तो वह दुःख और बंधन का कारण बनेगा। अंततः यह कहा जा सकता है कि अभिधर्म दर्शन में चित्त को अत्यंत सूक्ष्म और वैज्ञानिक दृष्टि से समझाया गया है। यह न केवल मानव अनुभव की प्रकृति को स्पष्ट करता है, बल्कि यह भी बताता है कि व्यक्ति अपने चित्त को नियंत्रित करके दुःख से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार चित्त का अध्ययन केवल दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक साधना का आधार भी है, जो व्यक्ति को आत्मज्ञान और निर्वाण की दिशा में अग्रसर करता है।

चित्त एवं चेतसिक धर्मों का पारस्परिक संबंध

अभिधर्म दर्शन में चित्त (Citta) और चेतसिक (Cetasika) धर्मों का संबंध अत्यंत गहन और अविभाज्य माना गया है। यह दर्शन इस बात को स्पष्ट करता है कि चित्त कभी भी अकेले अस्तित्व में नहीं आता, बल्कि वह सदैव चेतसिक धर्मों के साथ संयुक्त रूप में उत्पन्न होता है। चित्त और चेतसिक का यह सह-अस्तित्व (co-existence) बौद्ध मनोविज्ञान की मूल आधारशिला है, जिसके माध्यम से मानव मन की जटिलता को समझा जा सकता है। चित्त का कार्य केवल किसी विषय को जानना या उसका बोध करना है, जबकि चेतसिक धर्म उस ज्ञान को विशेष गुण, रंग और दिशा प्रदान करते हैं। इस प्रकार चित्त और चेतसिक एक ही प्रक्रिया के दो अभिन्न पक्ष हैं—एक बिना दूसरे के पूर्ण नहीं हो सकता। अभिधर्म में कहा गया है कि जहाँ चित्त है, वहाँ चेतसिक अवश्य होंगे, और जहाँ चेतसिक हैं, वहाँ चित्त का होना भी अनिवार्य है।

चेतसिक धर्म वे मानसिक तत्त्व हैं, जो चित्त के साथ मिलकर विभिन्न मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करते हैं। इनमें लोभ (लालच), द्वेष (घृणा), मोह (अज्ञान), श्रद्धा (विश्वास), स्मृति (सतर्कता), करुणा (दया), मैत्री (प्रेम) आदि प्रमुख हैं। ये तत्त्व चित्त के साथ उत्पन्न होकर उसे विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि चित्त के साथ लोभ या द्वेष जैसे चेतसिक जुड़े होते हैं, तो वह चित्त अकुशल (अशुभ) हो जाता है। इसके विपरीत, यदि चित्त के साथ करुणा, मैत्री या श्रद्धा जैसे चेतसिक जुड़े होते हैं, तो वह चित्त कुशल (शुभ) बन जाता है।इस प्रकार चित्त और चेतसिक का संबंध केवल सह-अस्तित्व का नहीं, बल्कि परस्पर निर्भरता का है। चेतसिक धर्म चित्त को नैतिक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करते हैं। यह संबंध मानव अनुभव की विविधता को समझाने में अत्यंत सहायक है।

2. चेतसिक धर्मों की भूमिका और वर्गीकरण

अभिधर्म में चेतसिक धर्मों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है, जैसे—सर्वत्रगामी (सभी चित्तों में उपस्थित), विशेष (विशिष्ट चित्तों में), कुशल (शुभ), अकुशल (अशुभ) आदि। यह वर्गीकरण यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक मानसिक अनुभव में विभिन्न प्रकार के चेतसिक धर्म सक्रिय रहते हैं, जो उस अनुभव की प्रकृति को निर्धारित करते हैं। उदाहरणतः—स्मृति (mindfulness) और प्रज्ञा (wisdom) जैसे चेतसिक चित्त को शुद्ध और नियंत्रित बनाते हैं, जबकि लोभ, द्वेष और मोह जैसे चेतसिक चित्त को अशुद्ध और विकृत बना देते हैं। इस प्रकार चेतसिक धर्मों का अध्ययन यह समझने में सहायता करता है कि मनुष्य के व्यवहार और अनुभव किस प्रकार उसके मानसिक तत्त्वों से प्रभावित होते हैं।

चित्त और चेतसिक का यह संयुक्त कार्य मानव मन को एक गतिशील और परिवर्तनशील प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करता है। यह दृष्टिकोण आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धांतों से भी सामंजस्य रखता है, जहाँ मन को विभिन्न प्रक्रियाओं और अवस्थाओं का समुच्चय माना जाता है।

3. कर्म-विपाक सिद्धांत में चित्त की केंद्रीय भूमिका

अभिधर्म दर्शन के अनुसार चित्त ही कर्म (Karma) का मूल आधार है। बुद्ध ने स्पष्ट रूप से कहा है— "चेतना ही कर्म है" (चेतनाहं भिक्खवे कम्मं वदामि)। इसका अर्थ यह है कि कर्म केवल बाह्य क्रियाएँ नहीं हैं, बल्कि वे मानसिक प्रवृत्तियाँ हैं, जो चित्त के माध्यम से उत्पन्न होती हैं। जब चित्त किसी विशेष चेतसिक के साथ संयुक्त होकर कार्य करता है, तब वह कर्म का निर्माण करता है। यदि चित्त कुशल चेतसिकों—जैसे करुणा, मैत्री, दया, प्रज्ञा—के साथ संयुक्त होता है, तो वह शुभ कर्म उत्पन्न करता है। इसके विपरीत, यदि चित्त लोभ, द्वेष और मोह जैसे अकुशल चेतसिकों के साथ जुड़ा होता है, तो वह अशुभ कर्म उत्पन्न करता है। इस प्रकार कर्म का मूल स्रोत बाहरी क्रिया नहीं, बल्कि आंतरिक मानसिक अवस्था है। यही कारण है कि बौद्ध दर्शन में मन (चित्त) को अत्यंत महत्व दिया गया है, क्योंकि वही कर्मों का नियामक है।

4. विपाक (फल) और चित्त का संबंध

कर्म के परिणामस्वरूप जो फल उत्पन्न होता है, उसे 'विपाक' कहा जाता है। यह विपाक भविष्य में सुख या दुःख के रूप में अनुभव किया जाता है। अभिधर्म के अनुसार, कर्म और विपाक का संबंध कारण-कार्य (cause-effect) के सिद्धांत पर आधारित है। चित्त द्वारा उत्पन्न कर्म ही भविष्य के चित्त को प्रभावित करता है। इस प्रकार एक चित्त से उत्पन्न कर्म दूसरे चित्त में फल के रूप में प्रकट होता है। यही प्रक्रिया जन्म-मरण के चक्र को निरंतर बनाए रखती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति करुणा और मैत्री के साथ कार्य करता है, तो उसका परिणाम सुखद अनुभवों के रूप में सामने आता है। इसके विपरीत,

यदि कोई व्यक्ति द्वेष और हिंसा के साथ कार्य करता है, तो उसका परिणाम दुःखद अनुभवों के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार चित्त न केवल वर्तमान जीवन को प्रभावित करता है, बल्कि भविष्य के जीवन और पुनर्जन्म की प्रक्रिया को भी निर्धारित करता है।

5. चित्त-प्रवाह (Stream of Consciousness) और पुनर्जन्म

अभिधर्म दर्शन में चित्त को एक निरंतर प्रवाह (continuum) के रूप में देखा गया है। यह प्रवाह एक क्षण से दूसरे क्षण तक चलता रहता है और कभी स्थिर नहीं होता। यही चित्त-प्रवाह कर्म और विपाक के माध्यम से एक जीवन से दूसरे जीवन तक जारी रहता है। यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि कोई स्थायी आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में नहीं जाती, बल्कि चित्त का प्रवाह ही कारण-कार्य संबंध के आधार पर आगे बढ़ता है। इस प्रकार पुनर्जन्म की अवधारणा को भी चित्त और कर्म के माध्यम से समझाया गया है।

कर्म-विपाक सिद्धांत में चित्त की भूमिका नैतिकता के साथ भी गहराई से जुड़ी हुई है। चित्त की शुद्धि ही नैतिक जीवन का आधार है। यदि चित्त शुद्ध है, तो व्यक्ति के कर्म भी शुद्ध होंगे, और उसका जीवन सुखमय होगा।अभिधर्म दर्शन यह सिखाता है कि व्यक्ति को अपने चित्त को नियंत्रित और शुद्ध करने का प्रयास करना चाहिए। यह कार्य स्मृति (mindfulness), ध्यान (meditation) और प्रज्ञा (wisdom) के माध्यम से किया जा सकता है। चित्त ही बंधन और मुक्ति दोनों का कारण है। जब चित्त लोभ, द्वेष और मोह से ग्रस्त होता है, तो वह व्यक्ति को संसार के चक्र में बाँधता है। इसके विपरीत, जब चित्त शुद्ध और नियंत्रित हो जाता है, तो वह निर्वाण की प्राप्ति का साधन बनता है।

अभिधर्म दर्शन के अनुसार, चित्त की पूर्ण शुद्धि के माध्यम से ही दुःख का अंत संभव है। यह शुद्धि प्रज्ञा, शील और समाधि के अभ्यास से प्राप्त होती है। इस प्रकार अभिधर्म दर्शन में चित्त और चेतसिक धर्मों का संबंध तथा कर्म-विपाक सिद्धांत में चित्त की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। चित्त केवल अनुभव का माध्यम नहीं, बल्कि कर्मों का निर्माता और उनके फल का अनुभवकर्ता भी है। चेतसिक धर्म चित्त को दिशा और स्वरूप प्रदान करते हैं, जबकि कर्म-विपाक सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि चित्त के आधार पर ही जीवन का संपूर्ण चक्र संचालित होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि चित्त का अध्ययन न केवल दार्शनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह व्यावहारिक जीवन में भी अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि इसके माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन को सुधार सकता है और अंततः निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है।

प्रतीत्यसमुत्पाद और चित्त का संबंध

बौद्ध दर्शन में प्रतीत्यसमुत्पाद (Dependent Origination) को एक अत्यंत मौलिक और केंद्रीय सिद्धांत माना गया है। इसका मूल भाव यह है कि इस संसार में कोई भी वस्तु, घटना या अनुभव स्वतंत्र रूप से

अस्तित्व में नहीं होता, बल्कि वह अनेक कारणों और परिस्थितियों पर निर्भर होकर उत्पन्न होता है। "इदं अस्ति तस्मात् इदं भवति"—अर्थात् जब यह है, तब वह होता है—यह सूत्र इस सिद्धांत की संक्षिप्त व्याख्या करता है। अभिधर्म दर्शन के संदर्भ में चित्त को भी इसी कारण-कार्य संबंध के अंतर्गत समझा गया है। चित्त न तो स्वतः उत्पन्न होता है और न ही यह स्थायी है; यह विभिन्न कारणों—जैसे इंद्रिय, विषय, पूर्व संस्कार, कर्म आदि—के आधार पर उत्पन्न होता है। जब ये कारण उपस्थित होते हैं, तब चित्त उत्पन्न होता है, और जब ये कारण समाप्त हो जाते हैं, तब चित्त भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार चित्त एक निरंतर प्रवाह है, जो कारणों की श्रृंखला पर आधारित है।

प्रतीत्यसमुत्पाद की द्वादश निदान श्रृंखला—अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम-रूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और जरा-मरण—में चित्त (विशेषतः 'विज्ञान') एक केंद्रीय कड़ी के रूप में कार्य करता है। यहाँ विज्ञान (चित्त) वह तत्व है, जो पूर्व संस्कारों के प्रभाव से उत्पन्न होता है और आगे नाम-रूप तथा अन्य कड़ियों को जन्म देता है। इस प्रकार चित्त न केवल स्वयं कारणों से उत्पन्न होता है, बल्कि आगे अन्य अनुभवों और अवस्थाओं का कारण भी बनता है। इस प्रक्रिया में यह स्पष्ट होता है कि चित्त जन्म-मरण के चक्र (संसार) को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब चित्त अविद्या (अज्ञान) और तृष्णा (आसक्ति) से प्रभावित होता है, तब वह इस चक्र को निरंतर चलाता रहता है। इसके विपरीत, जब चित्त को सही ज्ञान (प्रज्ञा) के माध्यम से शुद्ध किया जाता है, तब यह चक्र टूट सकता है। इस प्रकार प्रतीत्यसमुत्पाद यह दर्शाता है कि चित्त का नियंत्रण और शुद्धि ही दुःख के निवारण का वास्तविक उपाय है। यदि कारणों को समाप्त कर दिया जाए, तो उनके परिणाम भी समाप्त हो जाते हैं। यही सिद्धांत दुःख निरोध का आधार बनता है।

अभिधर्म दर्शन के अनुसार निर्वाण की प्राप्ति चित्त की पूर्ण शुद्धि पर निर्भर करती है। निर्वाण का अर्थ है—लोभ, द्वेष और मोह जैसे मानसिक विकारों का पूर्ण क्षय। जब चित्त इन विकारों से मुक्त हो जाता है, तब वह शुद्ध, शांत और निर्मल अवस्था को प्राप्त करता है, जिसे निर्वाण कहा जाता है। चित्त की यह शुद्धि स्वतः नहीं होती, बल्कि इसके लिए साधना और अभ्यास आवश्यक है। बौद्ध दर्शन में चित्त-शुद्धि के लिए तीन प्रमुख साधनों का उल्लेख किया गया है—प्रज्ञा, शील और समाधि। प्रज्ञा (ज्ञान) का अर्थ है यथार्थ का सही बोध। यह व्यक्ति को यह समझने में सहायता करती है कि सभी वस्तुएँ अनित्य, दुःखमय और अनात्म हैं। जब व्यक्ति इस सत्य को समझ लेता है, तो उसकी आसक्ति समाप्त हो जाती है और चित्त शुद्ध होने लगता है। शील (नैतिकता) व्यक्ति के आचरण को नियंत्रित और शुद्ध बनाता है। यह बाह्य व्यवहार को अनुशासित करता है, जिससे चित्त में स्थिरता और शुद्धता आती है। नैतिक जीवन के बिना चित्त की शुद्धि संभव नहीं है, क्योंकि अशुद्ध आचरण चित्त को विक्षिप्त और अशांत बनाता है। समाधि (एकाग्रता) चित्त को स्थिर और नियंत्रित करने का साधन है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने मन

को एकाग्र करता है और उसे विक्षेपों से मुक्त करता है। समाधि के अभ्यास से चित्त में गहन शांति और स्थिरता उत्पन्न होती है, जो निर्वाण की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। इन तीनों साधनों के समन्वय से चित्त की पूर्ण शुद्धि संभव होती है। जब चित्त पूर्णतः शुद्ध हो जाता है, तब वह संसार के बंधनों से मुक्त होकर निर्वाण की अवस्था को प्राप्त करता है। अभिधर्म दर्शन का चित्त-सिद्धांत दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह आत्मा के स्थायित्व की पारंपरिक अवधारणा का खंडन करता है और यह सिद्ध करता है कि मानव अस्तित्व किसी स्थायी आत्मा पर आधारित नहीं है, बल्कि यह निरंतर बदलते हुए मानसिक और भौतिक तत्त्वों का समुच्चय है। चित्त की क्षणिकता (क्षणभंगुरता) यह दर्शाती है कि कोई भी अनुभव स्थायी नहीं है। यह विचार अनित्य (impermanence) के सिद्धांत को पुष्ट करता है, जो बौद्ध दर्शन का एक प्रमुख आधार है। इसके साथ ही, अनात्म (non-self) का सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि 'मैं' या 'आत्मा' केवल एक कल्पना है, जिसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार अभिधर्म दर्शन एक यथार्थवादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसमें अनुभवों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझने का प्रयास किया जाता है। यह दृष्टिकोण व्यक्ति को मिथ्या धारणाओं से मुक्त करता है और उसे सत्य की ओर अग्रसर करता है।

अभिधर्म दर्शन का चित्त-सिद्धांत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह मानव मन की कार्यप्रणाली को समझने के लिए एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है। चित्त और चेतसिक धर्मों का विश्लेषण यह दर्शाता है कि मानव अनुभव विभिन्न मानसिक अवस्थाओं का परिणाम है। यह दृष्टिकोण आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धांतों—जैसे संज्ञान (cognition), भावना (emotion) और व्यवहार (behavior)—से मेल खाता है। अभिधर्म यह सिखाता है कि मनुष्य अपने मानसिक विकारों—जैसे क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि—को पहचान सकता है और उन्हें नियंत्रित कर सकता है। यह आत्मनिरीक्षण (introspection) और आत्मसंयम (self-control) की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करता है। ध्यान (meditation) और स्मृति (mindfulness) के अभ्यास के माध्यम से व्यक्ति अपने चित्त को समझ सकता है और उसे नियंत्रित कर सकता है। यह प्रक्रिया मानसिक स्वास्थ्य और आंतरिक शांति के लिए अत्यंत उपयोगी है।

अभिधर्म दर्शन केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यावहारिक जीवन में भी अत्यंत उपयोगी है। चित्त का अध्ययन व्यक्ति को यह समझने में सहायता करता है कि उसके विचार, भावनाएँ और कर्म किस प्रकार उसके जीवन को प्रभावित करते हैं। यदि व्यक्ति अपने चित्त को नियंत्रित और शुद्ध कर लेता है, तो वह अपने जीवन में शांति, संतुलन और संतोष प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत, यदि चित्त अशुद्ध और विक्षिप्त है, तो वह दुःख और अशांति का कारण बनता है। इस प्रकार अभिधर्म

दर्शन व्यक्ति को आत्म-सुधार और आत्म-विकास का मार्ग दिखाता है। यह उसे यह सिखाता है कि वह अपने चित्त के माध्यम से अपने जीवन को कैसे बेहतर बना सकता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि अभिधर्म दर्शन में चित्त को केंद्र में रखकर मानव अनुभव, कर्म, दुःख और निर्वाण की संपूर्ण प्रक्रिया को अत्यंत सूक्ष्म, वैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से समझाया गया है। प्रतीत्यसमुत्पाद के माध्यम से चित्त की कारण-निर्भरता स्पष्ट होती है, जबकि निर्वाण की प्राप्ति में चित्त की शुद्धि को सर्वोपरि माना गया है। चित्त ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने बंधन और मुक्ति दोनों का निर्माण करता है। यदि चित्त अज्ञान और तृष्णा से ग्रस्त है, तो वह दुःख का कारण बनता है; और यदि वही चित्त ज्ञान, नैतिकता और ध्यान के माध्यम से शुद्ध हो जाए, तो वह मुक्ति का मार्ग बन जाता है। अतः अभिधर्म दर्शन का चित्त-सिद्धांत न केवल दार्शनिक रूप से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह व्यावहारिक जीवन में भी अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि यह व्यक्ति को आत्मज्ञान, मानसिक शांति और अंतिम मुक्ति की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डा० भरतसिंह उपाध्याय, पाली साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन, वर्ष (2013)।
2. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, अभिधम्मत्थसङ्गहो, नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन, वर्ष (2013)।
3. प्रो० रामशंकर त्रिपाठी, अभिधम्मत्थसङ्गहो, वाराणसी: संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वर्ष (2017)।
4. डा० भीमराव अम्बेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धम्म, नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन, वर्ष (2007)।
5. डा० भीमराव अम्बेडकर, बुद्ध अथवा कार्ल मार्क्स, नई दिल्ली: डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, वर्ष (2013)।
6. प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, वर्ष (2023)।
7. स्वामी रामसुखदास, गीता प्रबोधनी, गोरखपुर: गीताप्रेस, वर्ष (1995)।
8. जयदयाल गोयन्दका, श्रीमद् भगवद्गीता तत्वविवेचनी, गोरखपुर: गीताप्रेस, संवत (2081)।
9. के० टी० एस० सराओ, प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म: उद्भव, स्वरूप एवं पतन, ताइपेई: द बुद्ध एजुकेशन फाउंडेशन, वर्ष (2005)।
10. डा० धर्मकीर्ति, बुद्ध का समाजदर्शन, नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन, वर्ष (2008)।